Shaheed Bhagat Singh Jayanti-2013

सामाजिक क्रान्ति के प्रतीक शहीद भगत सिंह (जयंती विशेष)

सामाजिक क्रान्ति के प्रतीक शहीद भगत सिंह को भारत का हर युवा बडी इज्जत की दृष्टि से देखता है लेकिन दूसरी तरफ उनके द्वारा सिखाए मूल्यों से दूर भागता है। प्रस्तुत लेख उनके कुछ विचारों का वर्णन करता है। इसे कामरेड श्याम सुंदर द्वारा रचित "शहीद भगत सिंह : लक्ष्य और विचारधारा " पुस्तक से संकलित किया है। यह पुस्तक शहीद भगत सिंह के विचारों का सबसे प्रमाणिक दस्तावेज है। प्रस्तुत लेख का शीर्षक है "थक कर बैठ मत जाना (पृष्ट २०४-२०८)

भगतसिंह और भाकपा के तुलनात्मक अध्ययन संबंधी अब तक की गयी तमाम चर्चा के आधार पर पक्के तौर पर कहा जा सकता है कि आजादी आंदोलन में भगतसिंह की धारा ही एक सच्ची और सही कम्युनिस्ट-क्रांतिकारी धारा थी, यही धारा भारतीय बोल्शेविज्म की धारा थी जबकि भाकपा की धारा भारतीय मेन्शेविज्म की धारा के इलावा और कुछ नहीं थी। अत: अब देश की जनता को पूंजीवादी शोषण और दमन से मुक्त होने के लिए भगतसिंह की विरासत के झंडे को ही बुलंद करना होगा। 22 मार्च, सन् 1931 को भगतसिंह ने अपने कैदी साथियों के नाम अन्तिम पत्र में निराधार ही नहीं कहा था कि : "मेरा नाम हिन्दुस्तानी क्रान्ति का प्रतीक बन चुका है और क्रान्तिकारी दल के आदर्शों और कुर्बानियों ने मुझे बहुत ऊंचा उठा दिया है–इतना ऊंचा कि जीवित रहने की स्थिति में इससे ऊंचा मैं हरगिज नहीं हो सकता। आज मेरी कमजोरियां जनता के सामने नहीं हैं। अगर मैं फांसी से बच गया तो वे जाहिर हो जाएंगी और क्रान्ति का प्रतीक चिन्ह मद्धिम पड़ जाएगा या सम्भवत: मिट ही जाए। लेकिन दिलेराना ढंग से हँसते हँसते मेरे फांसी चढ़ने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएं अपने बच्चों के भगतसिंह बनने की आरजू किया करेंगी और देश की आजादी के लिए–कुर्बानी देने वालों की तादाद इतनी बढ़ जाएगी कि क्रांति को रोकना साम्राज्यवाद या तमाम शैतानी शक्तियों के बूते की बात नहीं रहेगी ।" (जगमोहन–चमनलाल, 1986, पेज 409)

थक कर बैठ मत जाना

7 अक्तूबर सन् 1930 को ट्रिब्यूनल द्वारा लाहौर षड्यंत्र केस (द्वितीय) का निर्णय सुना दिया गया जिसके अनुसार भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव को फांसी; शिववर्मा, किशोरीलाल, गयाप्रसाद, महावीर सिंह बी. के. सिन्हा और के. एन. तिवाड़ी को आजीवन कारावास; कुंदनलाल को 7 वर्ष, प्रेमदत और जयदेव को 5–5 वर्ष की सजाएं तथा अजय घोष और जितेंद्र सान्याल को बरी कर दिया गया। फैसले के बाद शिववर्मा आदि आजीवन कारावासियों को लाहौर सैंट्रल जेल से किसी दूसरी जेल में भेजा जाना था। यह दिसंबर 1930 की बात है। जेलर इन क्रांतिकारियों के प्रति सहानुभूति रखते थे और जेल से तबादले के वक्त उन्होंने शिववर्मा की भगतसिंह से अंतिम भेंट करवादी। वीरेंद्र सिंधु ने सैन्ट्रल जेल लाहौर में भगतसिंह और उनके साथी शिववर्मा की अन्तिम मुलाकात का वर्णन इस प्रकार किया है: "अब शिव वर्मा भगतसिंह की काल–कोठरी के द्वार पर थे। बेड़ी की झनझनाहट सुन भगतसिंह जाग उठे और कूद कर जंगले से आ लगे। उन्होंने अपनी भुजाएं जंगले से बाहर निकाली और शिव वर्मा ने अपनी भुजाएं जंगले के अन्दर डाली। हृदयओं के बीच में लोहे की सलाखें थी, पर भुजाओं ने दोनों को एक जगह समेट दिया था । ... यह गहरे सुख की घड़ी थी । जीवन–मरण के दो साथी अचानक आ मिले थे । यह दारुण सुख

की घड़ी थी। जीवन-मरण के दो साथी सदा के लिए बिछुड़ रहे थे । आंखें, आंखों को आखिरी बार देख रहीं थीं। कान बातों को आखिरी बार सुन रहे थे । देह, देह का स्पर्श आखिरी बार अनुभव कर रही थी। दोनों एक दूसरे में समाये खड़े थे । शिव वर्मा की आंखें बरस पड़ी, भगतसिंह हँस कर बोले–'क्रांतिकारी पार्टी में आते समय मैंने सोचा था कि अगर मैं 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा देश के कोने-कोने में पहुँचा सका तो समझूँगा मेरे जीवन का मूल्य मुझे मिल गया है, पर आज तो मैं फांसी की इस कोठरी में भी अपने इस नारे की गूँज सुन रहा हूँ ।' उन्होंने आलिंगन को ढीला कर शिव वर्मा के दोनों कंधे पकड़ लिये और पूरे आत्मविश्वास एवं पूरे आत्म गौरव की ज्योति में जगमगा कर कहा–'मैं समझता हूँ इस छोटी सी जिंदगी का इससे अधिक मूल्य और हो भी क्या सकता है।' शिव वर्मा के हाथ भी ढीले पड़ गये और उन्होंने भगतसिंह का हाथ अपने हाथ में ले लिया । भगतसिंह ने उनका हाथ लाड़ और उत्साह से दबाते हुए कहा–'मैं' तो कुछ ही दिनों में सारे झंझटों से छुटकारा पा जाऊंगा, लेकिन तुम लोगों को लम्बा सफर पार करना पड़ेगा । मैं विश्वास करता हूं, तुम इस लम्बे अभियान में थककर रास्ते में नहीं बैठ जाओगे ।' एकबार दोनों हाथ पूरी गर्मी से मिले और अलग हो गये, फिर कभी न मिलने के लिए !" ('युगद्रष्टा भगतसिंह', 1983, पृष्ठ 213)

कितना मार्मिक प्रकरण है । भगतसिंह को अपने साथियों से कितनी उम्मीद थी कि वे उनके इन्कलाब के झण्डे को लेकर आगे बढ़ेंगे तथा उनके अधूरे काम को उसकी मंजिल तक लेकर जाएंगे और थक कर बैठ नहीं जायेंगे। लेकिन भगतसिंह की शहादत के बाद उनके साथियों ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया और बाद में उनमें से लगभग सभी उसी भाकपा में शरीक हो गये जिसके बारे में भगतसिंह ने कहा था कि एक गदर पार्टी को छोड़ कर बाकी किसी पार्टी को यह भी मालूम नहीं कि वे करना क्या चाहती हैं। भाकपा के संबंध में यह बात एकदम सच थी क्योंकि इस पार्टी का आजादी आंदोलन के दौरान न तो कोई अपना स्वतंत्र कार्यक्रम था और न ही स्वतंत्र बुद्धि । हम जानते हैं कि भगतसिंह ने अपने साथियों को बोल्शेविक किस्म की एक सही कम्युनिस्ट पार्टी बनाने का निर्देश दिया था और उनका वह सपना धरा का धरा रह गया। 23 मार्च 1931 को भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव की शहादत हुई। चंद्रशेखर आजाद और भगवतीचरण वोहरा पहले ही क्रमशः 27 फरवरी 1931 और 28 मई 1930 को शहादत प्राप्त कर चुके थे । इन दिग्गजों की शहादत के बाद इनके झंडे को उठाकर आगे बढ़ने की किसी ने हिम्मत नहीं दिखायी। निश्चित तौर पर यदि भगतसिंह का कोई एक भी साथी भगतसिंह के इन्कलाब के झण्डे को अपने कन्धों पर उठाने की हिम्मत दिखाता और उसे लेकर आगे बढ़ता तो उस के पीछे उठी शक्ति को साम्राज्यवाद और तमाम शैतानी शक्तियां रोक न पातीं। बौद्धिक रूप से इस महान कार्य के लिए भगतसिंह के साथी यशपाल सक्षम दिखाई पड़ते हैं लेकिन वे भी साहित्य के क्षेत्र तक ही सीमित होकर रह गये। अजय घोष तो लाहौर षडयंत्र केस में बरी होने के फौरन बाद सन् 1931 में ही 'भाकपा' के सदस्य बन गये थे और 1933 में ही वे उस पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के लिए चुन

(205)

लिये गये थे। बाद में सन् 1951 में वे 'भाकपा' के महामंत्री बन गये और सन् 1962 तक अपनी मृत्यु-पर्यन्त पार्टी के इस शीर्ष पद पर बने रहे। भगतसिंह के अन्य अनेक प्रतिष्ठावान साथी भी उसी पार्टी में जा मिले जिसकी वजह से गांधी और कांग्रेस की पिट्ठू पार्टी 'भाकपा', राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक रूप ग्रहण कर गई। और भी दुख की बात तो यह है कि भगतसिंह का झण्डा छोड़ कर जाने वाले उनके सभी साथियों ने अपनी कमजोरी को स्वीकार न करके भगतसिंह की मार्क्सवादी समझ को अपूर्ण और अधूरी बता दिया और जिस पार्टी की समझ को भगतसिंह हास्यास्पद मानते थे उसी को उन्होंने पूर्ण और सर्वोच्च मार्क्सवादी समझ के रूप में स्वीकार लिया।

भगतसिंह ने अपने आप को इस देश की समाजवादी क्रांति के प्रतीक होने का दावा किया था और उनका यह दावा न तो खोखला था और न ही किसी ओछे घमण्ड-वश। यह एक वस्तुगत ऐतिहासिक सत्य और तथ्य है। भगतसिंह, भारत की धरती पर समाजवादी क्रान्ति के प्रतीक और वैज्ञानिक समाजवाद के प्रथम चिन्तक थे। मार्क्सवाद-लेनिनवाद की उनकी समझ पूर्ण थी अथवा अपूर्ण यह कोई बहस का मुद्दा नहीं हो सकता लेकिन यह तथ्य उनके दस्तावेजों से सिद्ध है कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद की उनकी समझ भारत की तत्कालीन परिस्थितियों में पर्याप्त थी। मार्क्सवाद-लेनिनवाद के दर्शन और सिद्धान्तों की समझदारी और पकड़ की दृष्टि से सिद्धान्त और व्यवहार के क्षेत्र में किसी अन्य ने अपने को उनसे ज्यादा दक्ष अथवा निपुण सिद्ध नहीं किया । चाहे जितनी भी थी, इस देश की धरती पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों की सबसे ज्यादा पकड़ और समझदारी भगतसिंह की ही थी। 'भाकपा' की स्थापना करने वाले नेताओं की मार्क्सवादी-लेनिनवादी समझदारी का नमूना उनकी 1925 में प्रथम पार्टी कान्फ्रेंस के दस्तावेजों से परखा जा सकता है जैसा कि पिछले अध्याय में दिखाया जा चुका है और बाद में भी हर मुख्य मुद्दे पर भाकपा की समझदारी का मार्क्सवाद-लेनिनवाद से कोई मेल नहीं रहा; चाहे वह धर्म के आधार पर दो राष्ट्रों के सिद्धान्त का मामला हो अथवा सत्ता हस्तांतरण होने के बाद राजसत्ता के वर्ग-चरित्र के विश्लेषण का। सन् 1957 में केरल राज्य में पूंजीवादी सत्ता के अधीन अपनी पार्टी की सरकार बनाकर 'भाकपा' नेतृत्व ने यह भी सिद्ध कर दिया कि उसे पूंजीवादी सत्ता के अधीन सरकार की परिभाषा और उसकी जिम्मेदारियों का भी पता नहीं है। और पार्टी के निष्ठावान कार्यकर्ताओं ने जब अपनी पार्टी को शोषक वर्ग की प्रबन्धक कमेटी यानी सरकार के रूप में देखा तो इसकी प्रतिक्रिया के रूप में ही देश में चारू मजूमदार के नेतृत्व में नक्सलवाद का प्रादुर्भाव हुआ। क्योंकि 'भाकपा' को संशोधनवादी बता कर सन् 1964 में उससे अलग होने वाला 'माकपा' नेतृत्व भी उसी पुरानी लीक पर चलता रहा और चारू मजूमदार ने देखा कि 'माकपा' की राजनीति भी क्रान्तिकारी राजनीति नहीं है इसलिये प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने जन-युद्ध का ही बिगुल बजा दिया और देश के अनेक निष्ठावान मजदूरों, किसानों की संतानें अति-वामपंथी भटकाव का शिकार हो गयीं। यदि इस पार्टी के नेता भगतसिंह की शहादत के बाद, भगतसिंह के इन्कलाब का झण्डा उठाकर चलते और भगतसिंह के द्वारा दिये हुए मार्ग-दर्शन को अपनाते तो देश की जनता को शायद आज ये दुर्दिन न देखने पड़ते। भगतसिंह ने अपने कार्यों और

अपनी शहादत के द्वारा देश की परिस्थितियों और लोगों के चिन्तन में भारी बदलाव ला दिया था; केवल देश की क्रान्ति के हित में उस परिस्थिति का उपयोग करने की जरूरत थी । जगमोहन-चमन लाल अपनी किताब की भूमिका में इसी बात को लिखते हैं: "भगतसिंह महज एक व्यक्ति नहीं थे, वे एक आन्दोलन से पैदा हुए और फिर उस आन्दोलन का सर्वोच्च व सर्वोत्तम प्रतीक बन गये। भगतसिंह की विचारधारा सिर्फ एक व्यक्ति की ही नहीं, एक आन्दोलन की, बहुत से साथियों की सांझी सोच की विचारधारा बनी।"

जगमोहन-चमनलाल ने अपनी पुस्तक की भूमिका में यह भी लिखा: "भारत में समाजवादी चिन्तन मौलिक रूप से भगतसिंह से शुरू हुआ और उम्मीद है, इसी से इसकी अगली मंजिल तय होगी।" लेकिन भगतसिंह के न तो किसी साथी ने और न ही उनका उत्तराधिकारी होने का दावा करने वाले किसी अन्य ने भगतसिंह के समाजवादी, मौलिक चिंतन के आधार पर एक सही कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण का बीड़ा उठाया। यह महान ऐतिहासिक कार्य आज तक भी अधूरा पड़ा है। आज मुख्य रूप से देश के छात्रों-नौजवानों को भगतसिंह के इस अधूरे कार्य को पूरा करने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेनी होगी । नौजवान भारत सभा के घोषणा पत्र में अपील की थी कि: "नौजवानों को चाहिए कि वे स्वतंत्रतापूर्वक, गंभीरता से, शांति और सब्र के साथ सोचें। उन्हें चाहिये कि वे भारतीय स्वतंत्रता के आदर्श को अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य के रूप में अपनायें। उन्हें अपने पैरों पर खड़े होना चाहिये। उन्हें अपने आप को बाहरी प्रभावों से दूर रह कर संगठित करना चाहिये। उन्हें चाहिये कि मक्कार तथा बेईमान लोगों के हाथों में न खेलें, जिनके साथ उनकी कोई समानता नहीं है और जो हर नाजुक मौके पर आदर्श का परित्याग कर देते हैं । उन्हें चाहिये कि संजीदगी और ईमानदारी के साथ 'सेवा, त्याग, बलिदान' को अनुकरणीय वाक्य के रूप में अपना मार्गदर्शक बनायें। याद रखिये कि राष्ट्र-निर्माण के लिए हजारों अज्ञात स्त्री-पुरुषों के बलिदान की आवश्यकता होती है जो अपने आराम व हितों के मुकाबिले, तथा अपने एवं अपने प्रियजनों के प्राणों के मुकाबिले देश की अधिक चिंता करते हैं।" (जगमोहन-चमनलाल, 1986, पेज 248)

विद्यार्थी और राजनीति नामक अपने लेख में भगतसिंह छात्रों को संबोधित करते हुए लिखते हैं: "...हम यह मानते हैं कि विद्यार्थियों का मुख्य काम पढ़ाई करना है, उन्हें अपना पूरा ध्यान उस ओर लगा देना चाहिये लेकिन क्या देश की परिस्थितियों का ज्ञान और उनके सुधार के उपाय सोचने की योग्यता पैदा करना उस शिक्षा में शामिल नहीं ? यदि नहीं तो हम उस शिक्षा को भी निकम्मी समझते हैं, जो सिर्फ क्लर्की करने के लिये ही हासिल की जाये । ऐसी शिक्षा की जरूरत ही क्या है? कुछ ज्यादा चालाक आदमी यह कहते हैं – 'काका, तुम पालिटिक्स के अनुसार पढो और सोचो जरूर, लेकिन कोई व्यावहारिक हिस्सा न लो। तुम अधिक योग्य होकर देश के लिये फायदेमंद साबित होंगे'।" (वही, पेज 202)

आज भी छात्र-युवाओं को बहुत से नेता और बुद्धिजीवी या तो राजनीति से दूर और विलग रहने की शिक्षा देते हैं या फिर उनसे श्री राहुल गांधी की भांति,

सीधा-सीधी अपनी स्वार्थी-पूंजीवादी राजनीति में शामिल होने की अपील करते हैं । यह एक कठोर सचाई है कि वर्तमान वर्ग-विभाजित पूंजीवादी समाज में न तो कोई व्यक्ति वर्गोपरि है और न ही राजनीति में तटस्थ है। किसी के लिए भी यह विकल्प संभव नहीं कि वह राजनीति करे या न करे। पूंजीवादी राजनीति ने तो शोषित-पीड़ित वर्ग के हर सदस्य के जीवन को नागपाश की भांति जकड़ा हुआ है। विकल्प हमारे सामने दो ही हैं कि या तो इस पूंजीवादी राजनीति के नागपाश में जकड़े पड़े रहो या फिर इस नागपाश को तोड़ डालने के लिये शिक्षित और संगठित हों। राजनीति में भाग न लेने की तो किसी के पास छूट ही नहीं है।भाग तो वह जाने-अनजाने ले ही रहा है। निर्णय तो इस बात का करना है कि हम भगतसिंह की क्रांतिकारी राजनीति में हिस्सा लें या फिर नामधारी कम्युनिस्टों अथवा अन्य पूंजीवादी पार्टियों की राजनीति में। एंगेल्स ने लिखा है "राजनीतिक क्रिया से सर्वथा विरत रहना असंभव है। विरतीवादी समाचार पत्र रोजाना राजनीति में भाग लेते हैं । प्रश्न केवल यह है कि आप राजनीति में कैसे भाग लेते हैं और किस प्रकार की राजनीति में भाग लेते हैं।" (21 सितंबर 1871 को अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के लंदन सम्मेलन में दिये गये भाषण से)

मार्क्स-एंगेल्स की इस प्रकार की शिक्षाओं के गहन अध्ययन के बाद ही भगतसिंह ने अपने अनेक लेखों में वर्ग-चेतना और उसके आधार पर मजदूर वर्ग की राजनीति करने का संदेश देश की जनता को दिया है, जिनका पहले कई जगह जिक्र किया जा चुका है। लेकिन देश के मजदूर वर्ग, छात्रों-नौजवानों और क्रांति की बातें करने वाले देश के बुद्धिजीवियों में भी वर्ग-चेतना का अभाव बना हुआ है। वर्ग-चेतना ही क्रांतिकारियों को क्रांति की सही दिशा में बनाये रख सकती है। जिनमें वर्ग-चेतना नहीं है उनकी जीवन-क्षमताओं का लाभ शासक और शोषक वर्ग ही उठाते आये हैं। मिसाल के तौर पर जब भगतसिंह 1920 के दशक में राष्ट्र-चेतना एवं वर्ग-चेतना से लैस होकर अंगेजशाही से लोहा ले रहे थे तो उसी समय में उन्हीं की उम्र का एक अन्य नौजवान ध्यानचंद जो हाकी-जादूगर के नाम से विख्यात है, जालिम अंग्रेजशाही की राज्य-मशीनरी यानी फौज का हिस्सा बने हुए थे तथा अंग्रेज शासकों की अपने ही राष्ट्र को गुलाम बनाये रखने में मदद कर रहे थे। क्योंकि उनके दिलोदिमाग में वर्ग-चेतना तो दूर राष्ट्र-चेतना का भी प्रवेश नहीं हो पाया था। लेकिन आज भगतसिंह के लिये नहीं बल्कि ध्यानचंद के लिये मांग उठ रही है कि उन्हें राष्ट्र-रत्न के खिताब से नवाजा जाये। आज सचिन तेंदुलकर के लिये भारत-रत्न के पुरस्कार की मांग जोरों से उठ रही है लेकिन वर्ग-चेतना, वर्ग-संघर्ष और वर्ग-राजनीति की दृष्टि से सचिन तेंदुलकर ठीक उसी तरह शासक भारतीय पूंजीपति वर्ग के हीरो हैं जिस प्रकार हाकी जादूगर ध्यानचंद ब्रिटिश इंडिया के हीरो थे। अतः आज देश के छात्र-युवा वर्ग को फिल्मी और खेल-जगत की हस्तियों को अपना हृदय-सम्राट न बना कर भगतसिंह की क्रांतिकारी शोषित वर्गीय राजनीति के झंडे को बुलंद करना अपना ध्येय बना लेना चाहिये। भगतसिंह ही आज शोषित-पीड़ित मजदूरों-किसानों के पथ-प्रदर्शक और आदर्श-पुरुष हैं।

❑❑❑

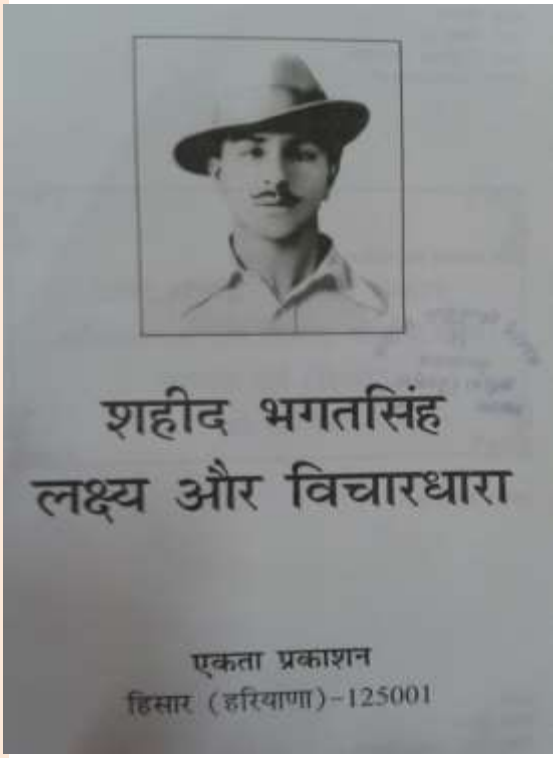

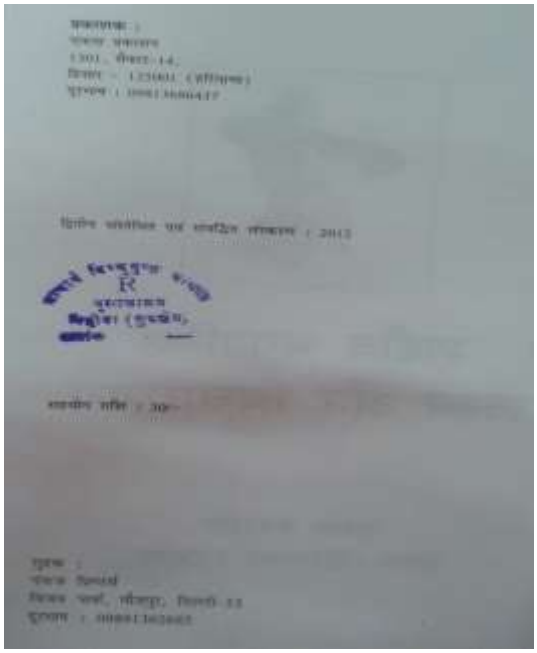

Links:

The Philosophy of Liberation:

http://msesaim.wordpress.com/2013/09/27/सामाजिक-क्रान्ति-के-प्रत/

Interdisciplinary Studies:

http://niyamakreference.blogspot.in/2013/09/blog-post_27.html

27th September,2013